हिन्दी अनुशीलन

शिवपूजन सहाय विशेषांक

वर्ष 60 मार्च-2018 अंक-1

देवनागरी का सजग शिल्पी : शिवपूजन सहाय

डॉ0 राजकुमार व्यास

आधुनिक भारत के इतिहास में राष्ट्रीय आंदोलन का कठिन संघर्ष, स्वतंत्रता का विजय उत्सव और स्वाधीनता के बाद राष्ट्र–निर्माण की चुनौतियाँ प्रेरणास्पद घटनाएँ हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय का विराट व्यक्तित्व इन युगांतकारी घटनाओं का ना केवल साक्षी था अपितु सहभागी भी था और अनेक संदर्भों में उन्होंने अपने समय और समाज को नेतृत्व भी प्रदान किया। स्वाधीनता के आंदोलन में जनजागरण और लोकचेतना के लिए तद्युगीन पत्रकारिता ने बौद्धिक वातावरण तैयार किया। पत्र–प्रकाशन का कार्य बहुत ही श्रमसाध्य कार्य था। उस दौर में आचार्य शिवपूजन सहाय ने प्रकाशन के सभी महत्वपूर्ण दायित्वों को प्राणप्रण से निभाया। साहित्यकार और पत्रकार के मध्य भाषा एक मजबूत सेतु का कार्य करती है। खड़ी बोली के गद्य की शैली और स्वाधीनता के बाद राष्ट्रभाषा के समक्ष आने वाली चुनौतियों के संदर्भ में आचार्य जी बहुत चिंतित रहते थे। हिन्दी के साहित्यकारों, पत्रकारों सुधी पाठकों और हिन्दी प्रेमियों ने उन्हें हिंदी भूषण, हिंदी हितैषी और हिन्दी के दधीचि जैसे नामों से विभूषित किया। साहित्य और पत्रकार के रूप में हिन्दी लेखन के बुनियादी सिद्धांतों के प्रति बहुत संवेदनशील रहे। नवजागरण का बहुत सा भार हिन्दी गद्य ने ही वहन किया और इसीलिए वे गद्यशैलियों के परिष्कार और भाषा के संस्कार को बहुत महत्व देते थे। लोकतांत्रिक जीवन मूल्यों में उनकी गहरी आस्था थी। इसलिए अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में वे भाषा के सुधार और निखार दोनों के पक्षधर थे और लगातार इसी दिशा में कार्य करते रहे। प्रस्तुत आलेख में हिन्दी भाषा के मानक रूप, संस्थापन और प्रयोग के प्रति आचार्य शिवपूजन सहाय के दृष्टिकोण और वैचारिक संदर्भों का विवेचन किया गया है। इसमें उनके भाषाबोध के दो पक्ष सामने आते हैं– एक आजादी के बाद हिन्दी के संवैधानिक प्रावधानों की स्थिति और राष्ट्रीय आंदोलन के दौर की हिन्दी। हिन्दी भाषा के समकालीन परिदृश्य में यह दोनों ही पक्ष बहुत महत्व रखते हैं।

हिन्दी को लोक व्यवहार, प्रशासन और विचार विनिमय की भाषा बनाने के लिए आचार्य जी ने अथक परिश्रम किया। साधारण प्रजाजनों के भावबोध और वैचारिक स्तर के लिए उनके मन में बहुत ही सम्मान का भाव था। क्लिष्ट हिन्दी और बोलचाल की हिन्दी की बहस के बीच उन्होंने सरल और सहज हिन्दी का पक्ष लिया। रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा के लिए उन्होंने विनोदपूर्ण शैली में लिखा है– "वास्तव में द्विवेदी जी दूसरों के समझने के लिए ही लिखते हैं, पर शुक्लजी केवल अपने ही समझने के लिए।... द्विवेदी जी सर्वसाधारण जनता के लिए लिखते हैं और शुक्लजी लिखते हैं एम.ए. के छात्रों के लिए। द्विवेदी जी अपढ़ों और गरीबों के लेखक हैं, शुक्लजी डिग्रीधारियों और अनंतपथगामियों के ।"[1] यह टिप्पणी उन्होंने 'भट्टनायक' के छद्म नाम से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की समीक्षा करते हुए की। दरअसल 'गंगा'[2] नाम की जिस पत्रिका में यह समीक्षा प्रकाशित हुई, आचार्य शिवपूजन सहाय उसके संपादन कार्य से संबंधित थे। हिन्दी गद्य की सहजता और सरलता के पक्षधर आचार्य शिवपूजन सहाय ने स्वाधीनता के सेनानी और राष्ट्र निर्माता के तौर पर साधारण जनता के पक्ष को समझा और इसीलिए भाषा की उलझनों को दूर करने के प्रयत्न किए। रचनाकारों के लिए उनके मन में बहुत सम्मान था। साहित्यकारों के कार्य को उन्होंने आत्म–बलिदान की संज्ञा दी है– 'साहित्य को अपनी अच्छी–से–अच्छी देन से श्रीसम्पन्न करने के लिए साहित्यकार जब शब्दशिल्पी बनकर बैठता है, तब उसकी शब्दमाला अथवा वाक्यमाला उसके रक्तकणों की मणियों से गुंथी जाती है। इस प्रकार तुलसी के रक्तदान का अनुमान कर सकना कठिन नहीं है, वे अपनी जीवन–शक्ति के एक–एक बिंदु से हिन्दी की काव्य–क्यारी सींच गए। क्या उनको बलिदानी मानने में किसी सहृदय व्यक्ति को कोई हिचक हो सकती है।'[3] शब्द–साधना की एकांत–साधना के लिए उनका यह कथन उनकी स्वयं के जीवन–संघर्ष का प्रमाण वाक्य है।

भारतीय जनमानस युगीन चुनौतियों से जूझ रहा था। ऐसे में तत्कालीन परिदृश्य में अनेकानेक मौन–साधकों की आवश्यकता थी। आचार्यजी ने स्वयं को ही एक बलिदानी के रूप में देखा प्रशिक्षित किया और राष्ट्रभाषा के राजसूय यज्ञ के लिए न्यौछावर कर दिया। रचना प्रक्रिया में अभ्यास और त्रुटियों को स्वीकारने और संशोधन का संकेत करते हैं।" साहित्य के पहले ड्रॉफ्ट का विश्वास करना हमेशा ठीक नहीं होता। उसे बार–बार माँजना और सँवारना चाहिए। तभी भाषा की सामर्थ्य का असली ज्ञान लेखक को होता है।"[4] माँजने और सँवारने की प्रक्रिया में वे रचनाकार को अकेला नहीं छोड़ते थे। प्रकाशन में सहयोग के साथ–साथ संपादन का भार भी अपने ऊपर ले लेते थे।

स्वाधीनता के पूर्व के समय में औपनिवेशिक शासन के अपने पूर्वाग्रह थे। उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक तक गद्य की सभी विधाएँ सामाजिक और राजनीतिक वातावरण के लिए भाव–सामग्री को विस्तार दे रही थीं। एक ही समय में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व जनमानस को आंदोलित कर रहा था। आदर्श केवल स्वप्न साबित हो रहा था, यथार्थ की कड़वाहट को हर कोई गले से नीचे उतार ले यह संभव नहीं था। कठिन कर्मभूमि कर्मवीरों की राह तकती थी ऐसे में मतवाला मंडल सक्रिय हो उठा और जन–जागरण के लिए युगीन समस्याओं की व्याख्याएँ सामाजिक संकीर्णताओं के प्रतिउत्तर प्रकाशित होने लगे। इस दौर में सहायजी ने लेखक के रूप में भारतीय मनीषा को उसकी समग्रता के साथ व्यक्त किया। राष्ट्रीय सांस्कृतिक जागरण में भाषाभूषण के रूप में उन्होंने निरंतर नवीन प्रवृत्तियों और शैलियों के प्रचार प्रसार में योगदान दिया। आचार्य जी ने साहित्यिक और रचनात्मक योगदान के माध्यम के रूप में हिन्दी भाषा की महती भूमिका को पहचाना और उसे युग की चुनौतियों का सामना करने के अनुरूप ढालने का कठिन व्रत लिया। रामधारी सिंह दिनकर ने उनकी कार्यशैली और जीवनदर्शन के संदर्भ में लिखा है– "साहित्य के एक काम को बड़ा और दूसरे को छोटा वे नहीं समझते थे। जिस मनोयोग और आंतरिक प्रसन्नता के

भूमिका को वे बहुत सराहते हैं और प्रश्रय देते हैं। हिन्दी के सामर्थ्य के लिए अनेक युक्तियाँ भी सूझाते हैं। तुलसीदास की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा के व्याकरणिक संदर्भों से वे हिन्दी के शब्दभंडार के लिए बहुत अनुकूल संकेत हासिल करते हैं और लगभग आह्वान की मुद्रा में अधिकारी विद्वानों को इस कार्य–योजना के लिए प्रेरित करते हैं– "लोकभाषाओं की क्रियाशक्ति भी हिन्दी से बड़ी–चढ़ी दिखती है। संस्कृत और अंग्रेजी की तरह उनमें भी संज्ञा और विशेषण के शब्दों से क्रिया बना ली जाती है। गोस्वामीजी ने संस्कृत और लोकभाषाओं की इस विलक्षण क्षमता को परखा और भाषा की वैभव–वृद्धि के लिए उसे अपनाया भी, तुलसी रचित साहित्य में क्रियाओं के जैसे सुंदर प्रयोग मिलते हैं, वैसे अभी शिष्ट हिन्दी में विशेष प्रचलित नहीं हुए हैं। उन प्रयोगों को आधुनिक गद्य में खपाने की चेष्टा भी अधिकारी विद्वान नहीं करते। इससे भाषा की एक प्रबल शक्ति उपेक्षित रह जाती है।"[15] इस लेख में वे तुलसी साहित्य से अनेक उदाहरण देते हैं और हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना सार्मथ्य को समृद्ध करने का निवेदन करते हैं– "राष्ट्रभाषा हिन्दी की शक्ति–वृद्धि के उद्देश्य से अतीत–युग के समस्त साहित्य का मन्थन करके यदि केवल एक क्रिया–कोश का निर्माण किया जाय और सभी क्रियाओं के रूप शोध कर, उन्हें प्रयोगोपयोगी बनाकर, सोदाहरण प्रदर्शित किया जाय तो हमारी भाषा समृद्धिशालिनी हो सकती है। इस विषय पर गंभीरता और दूरदर्शिता से विचार होना चाहिए।"[16] भाषा के मानकीकरण और शब्द भंडार के लिए वे कार्यशालाओं और गोष्ठियों की एक श्रृंखला कायम करना चाहते थे। आदर्श को हासिल करने के लिए कर्म उनके लिए श्रेष्ठ विकल्प था। विसंगतियों की स्वीकार्यता के साथ ही आम–सहमति का पथ प्रशस्त किया जा सकता है। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक हिन्दी प्रथप्रदर्शक और राष्ट्रभाषा के ध्वजवाहक थे। स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील राष्ट्र की साहित्यिक और रचनात्मक आवश्कताओं को आचार्य जी ने जुनून की हद तक पूरा किया। उनका यह योगदान अविस्मरणीय है।

स्वाधीनता के बाद हिन्दी भाषा और राष्ट्रीय हितों के बनते–बिगड़ते परिदृश्य ने उन्हें बहुत विचलित कर दिया था। जनता का लोकतंत्र से मोहभंग हो रहा था और स्वतंत्र हो चुके देश के जनमानस का उत्साह फीका पड़ता जा रहा था। स्वाधीनता के साथ विभाजन के दंश भी थे तो भाषायी आधारों पर राज्यों के गठन ने विषमताओं का वातावरण बना दिया था। हिन्दी जो राष्ट्रीय एकता की वाहक थी। नई चुनौतियों का सामना कर रही थी। उसकी सर्वस्वीकार्यता का दायरा सिमटने लग गया था। ऐसे में उनका चिंतित होना स्वाभाविक है। वे भाषा के प्रश्न पर गैरजिम्मेदाराना राजनीतिक वातावरण ने उन्हें निराश कर दिया था– "राष्ट्र के कर्णधारों को अपनी गद्दी प्यारी है हिन्दी नहीं। हम हिन्दीवालों में सचमुच संघशक्ति होती तो मतदान के समय हम स्वेच्छाचारी निरंकुश नेताओं को मजा चखा सकते थे। किन्तु ऐसी संगठित शक्ति का स्त्रोत भी हिन्दी क्षेत्र में नहीं है। आंदोलन छेड़कर उसे सक्रिय रूप में आगे बढ़ानेवाले समर्थ और लोकप्रिय हिन्दी–पत्र भी पूँजीपतियों के अधिकार में हैं। नेतृत्व के योग्य कोई व्यक्ति भी नहीं रहने दिया गया।"[17] विदेशी शासन के विरुद्ध मोर्चा कायम करना और फतह हासिल करना अलग बात है और अंतर्देशीय संदर्भों में वैविध्य को स्वीकार कर व्यवस्था कायम करना अलग बात है। हिन्दी के संवैधानिक उपबंधों के बाद देश में भाषायी समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया था। राष्ट्रभाषा के बुनियादी सवाल आचार्य जी को भी परेशान करते थे– "राष्ट्रभाषा के निराधार होने का एक

कारण और भी है। आर्यावर्त (उत्तर भारत) की प्रांतीय सरकारें तो राष्ट्रभाषा के हित में कुछ तत्पर भी हैं, पर खेद है कि केन्द्रीय सरकार से यथोचित प्रेरणा और उत्तेजना प्राप्त नहीं हो रही है। यह शोचनीय स्थिति ही राष्ट्रभाषा को दयनीय स्थिति में डाले हुई है।"[18] स्वाधीनता के सेनानी शासक बन गए थे। शासकों की चित्तवृत्ति जनता की चित्तवृत्ति से भिन्न होती है। लोकजीवन के संघर्ष और उम्मीदें तत्कालीन परिस्थितियों में सरकारों के दायित्वहीन व्यवहार के कारण दरकने लगी थीं। जो आरंभ में मोहभंग की स्थिति थी। वह धीरे–धीरे स्पष्ट होने लगी थी और हिन्दी भाषा के लिए यह कठिन समय था।

राज्य और केन्द्र सरकार के ढुलमुल रवैये ने हिन्दी को बहुत विकट स्थिति में पहुँचा दिया था। इस दयनीय स्थिति में भी वे संगठित प्रयासों की आशा जगाते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने की बात करते हैं– "सैंकड़ों पत्र–पत्रिकाओं से भी हिन्दी का गौरव तब तक नहीं बढ़ सकता, जब तक उसका बाह्याभ्यंतर परिमार्जित और परिष्कृत नहीं होता।... भाषा और साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त इस अराजकता के अपराधी हम सब हैं कोई एक व्यक्ति या समुदाय नहीं। भाषा का रूप और साहित्य की दिशा निश्चित करने में न हम एकमत हैं और न तत्पर ही हैं। हम जो कुछ लिख दें वही भाषा हो गई, हम जो कुछ रच दें वही साहित्य बन गया। न कोई हमारी बागडोर थामनेवाला है और न हम किसी की लगाम मानने को तैयार ही हैं।"[19] देश की आजादी के बाद से उन्हें लगता था कि एकता और अखंडता के लिए नयी पीढ़ी को बहुत श्रम करना होगा। गद्य–निकष पर खरा उतरना सरल नहीं। इसके लिए दत्तचित्त होकर अभ्यास की जरुरत है। नई पीढ़ी में धैर्य नहीं है। कठिन साधना से ही शब्द की सिद्धि प्राप्त होती है और तपस्वी का स्वभाव तो उसकी अनिवार्य शर्त है ही। स्वाधीन भारत में साहित्य और भाषा के गौरवपूर्ण समय की पदचाप सुन रहे थे–

"हिन्दी भाषा और साहित्य के सुदिन अभी आ रहे हैं। दोनों वर्तमान प्रगतिशीलता में आशा और उत्साह की किरणें झलक रही हैं। उपयुक्त अवसर और समीचीन संरक्षण पाकर दोनों की विजय पताकाएँ आकाश में लहरायेंगी।"[20] स्वाधीनता के बाद निर्माण और विकास की अनेक आधारभूत समस्याएँ आ खड़ी हुई। स्वतंत्र भारत एक जटिल संघर्ष में उलझ गया। इस संघर्ष के भीतरी–बाहरी अनेक मोर्चे थे। भाषायी अस्मिताओं का संघर्ष, सामाजिक विद्रूपताएँ, आर्थिक विसंगतियाँ, धार्मिक उन्माद और वैश्विक चुनौतियाँ हर कदम पर जनता और जनतंत्र दोनों की परीक्षा ले रही थी। हिन्दी की दृढ़ता और भविष्य के लिए बहुत उत्साहित भी थे– "हिन्दी को किसी भाषा से ईर्ष्या–द्वेष है ही नहीं । वह तो अपनी सुगमता के भरोसे निश्चिन्त है। वह किसी को नेवता नहीं देती, दुनिया अपने मतलब से उसकी और खिंची चली आ रही है।"[21]

सरस्वती की मौन साधना ही आचार्यजी के विराट व्यक्तित्व का ऊर्जा–स्त्रोत था। पत्रकार और साहित्यकार का संतुलन उन्होंने अंत तक बनाए रखा। व्याकरण और भाषाविद के रूप में उनका संपादन कौशल अप्रतिम था। वे हिन्दी की संवैधानिक स्थिति और स्वाधीन भारत में उसकी दशा और दशा के विषय में बहुत जागरुक थे। एक शब्द–शिल्पी के रूप में उनके व्यक्तित्व के इस विशिष्ट पहलू का प्रस्तुत विवेचन उनकी दुश्चिंताओं का संकेत भर है। उनकी चिंताएँ सामयिक संदर्भों में बहुत प्रासंगिक हैं। उन्होंने भाषा के परिष्कार और शिक्षण–प्रशिक्षण और अभ्यास के लिए जो

कार्य–योजनाएँ बनाई और संकल्प लिए उनको परिणति तक पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है। उनका विपुल साहित्य और अनुभव हिन्दी जगत की निधि है। स्वाधीनता और लोकतंत्र की पूर्वपीठिका से मोहभंग तक सबकुछ उन्होंने देखा, महसूस किया और अभिव्यक्त किया। आधी सदी पुरानी आचार्य जी की यह चिंताएँ वर्तमान परिदृश्य में हमें सचेत करती है। अपने बौद्धिक आग्रहों से इतर भाषा के विकास और संस्कार के लिए आज के रचनाकारों को एक सशक्त भूमिका का निर्वाह करना है। यही देवनागरी की सच्ची सेवा होगी और देवनागरी के उस शब्द–शिल्पी को सच्ची श्रद्धांजलि भी।

संदर्भ :

1. समीक्षा– हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 161–162,संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
2. गंगा, सुल्तानगंज, भागलपुर, नवम्बर–दिसम्बर,1930
3. आचार्य शिवपूजन सहाय, हिन्दी साहित्यकारों के बलिदान, हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 136, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
4. रामधारी सिंह दिनकर, शिवपूजन सहाय, पृ. 124, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर। द्वितीय पाठ्य संस्करण– 1997
5. रामधारी सिंह दिनकर, शिवपूजन सहाय, पृ. 124, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर। द्वितीय पाठ्य संस्करण– 1997
6. वियोगी हरि, वे स्मरणीय प्रसंग, पृ. 44, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, प्रथम संस्करण– 1978
7. रामधारी सिंह दिनकर, शिवपूजन सहाय,पृ. 124, संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर। द्वितीय पाठ्य संस्करण– 1997
8. वीरेन्द्र परमार, कथाकार आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 134, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण–2010
9. डॉ. नामवरसिंह, हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, भूमिका, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
10. वियोगी हरि, वे स्मरणीय प्रसंग, पृ. 44, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा, प्रथम संस्करण– 1978
11. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी गद्य का विन्यास और विकास, पृ. 211, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। संस्करण– 2006
12. विजयकांत धर दूबे, निबंध श्री, पृ. 164–65, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद। संस्करण – 2007
13. समीक्षा– अच्छी हिन्दी, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 164,संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
14. समीक्षा– अच्छी हिन्दी, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 165,संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
15. आचार्य शिवपूजन सहाय, तुलसी–प्रयुक्त क्रियाएँ, हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 119, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
16. क्या अंगरेजी हिन्दी से हार गयी, धर्मयुग, बंबई, एक जुलाई, 1962
17. आचार्य शिवपूजन सहाय, राष्ट्रभाषा का विरोध(त्रैसामसिक– साहित्य, पटना, 1953), हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 35, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली।
18. आचार्य शिवपूजन सहाय, भाषा का रूप और साहित्य की दिशा (साप्ताहिक–नवयुग, नई दिल्ली, 1945) 19, हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 23–24, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण–1996
20. आचार्य शिवपूजन सहाय, हिन्दी भाषा और साहित्य (1941), हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 21, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996
21. आचार्य शिवपूजन सहाय, हिन्दी की व्यापकता (1942), हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य शिवपूजन सहाय, पृ. 21, संकलन–संपादन– मंगलमूर्ति, सारांश प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली। प्रथम संस्करण– 1996

सहा0 प्रोफेसर हिन्दी विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर